UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Refereed Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 171, Vol - XVII (4), June - 2018, Page No. 106-107
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

एस.अहमद की रचनाओं में आदिवासी एवं दलित विमर्श

प्रस्तुत शोधपत्र में एस.अहमद की रचनाओं में आदिवासी एवं दलित विमर्श की चर्चा की गई है। अहमदजी ने सबका ध्यान इन जनजातियों की ओर खींचने का प्रयास किया है। इस प्रकार इन जनजातियों को लेकर गंभीर लेखन करने से ये कई लोगों की नाराजगी का पात्र भी बने, किन्तु उन्होंने इन सब बातों की परवाह न करते हुए अपना लेखन अनवरत् जारी रखा। इन्होंने तरह-तरह की जनजातियों के जीवन को अपने लेखन में शामिल किया, जिनके नाम लेना भी संभव नहीं है। इन्होंने न केवल इन जनजातियों के दुःख-दर्द एवं कष्टों को दूर से देखा, बल्कि उन्हें अच्छी तरह समझने के लिए काफी वक्त भी उनके साथ बिताया, इसलिए उनके द्वारा जनजातियों पर किया गया रचनात्मक कार्य सिर्फ कोरी बात न होकर अनुभूत सत्य है।

डॉ.वंदना कुमार* एवं ममता सिंह**

एस. अहमद समकालीन हिंदी कहानी के उन रचनाकारों में से एक हैं, जो गुमनामी के अँधेरे से निकलने का प्रयत्न करते रहे हैं एवं उन्होंने जो भी मुकाम पाया है, अपने लेखकीय कौशल के दम पर ही पाया है। ना उन्हें बनाने में किसी का हाथ है और ना ही किसी का सहारा। हाँ, कुछ खास लोगों ने उन्हें हिम्मत और प्रेरणा अवश्य दी है। एस. अहमद की रचनाएँ सदा ही आम जीवन के इर्द–गिर्द घूमती नज़र आती हैं, उन्होंने सदैव यही कोशिश की है कि उनकी रचनाएँ काल्पनिकता से अधिक सत्य के निकट हो, और यही वजह है कि उन्होंने हमेशा असहाय स्त्रियों, बेबस लोगों, आदिवासी जनजातीय समुहों के दुःख दर्द को ही अपनी कहानी में उतारा है।

एस. अहमद मुख्यतः एक फोटोग्राफर थे और वो ऐसी तस्वीरें खींचा करते थे, जिनका कोई जवाब ही नहीं होता था। वे छत्तीसगढ़ जनसंपर्क विभाग में कार्यरत थे। उनकी बेहतरीन चित्रों की कई एकल प्रदर्शनीयाँ देश के भिन्न–भिन्न हिस्सों में लग चुकी है एवं प्रशंसा का पात्र बन चुकी है। वे अपने विभाग की तरफ से फोटोग्राफर के रूप में कई क्षेत्रों में कवरेज के लिए जाया करते थे और उसी कार्य के दौरान बस्तर एवं सरगुजा जैसे सुदूर इलाकों की आदिवासी जनजातियों से रूबरू होने का मौका उन्हें मिला था। आदिवासियों के विषय में बात करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि आदिवासी कौन है, इनके विषय में भिन्न–भिन्न विद्वानों ने अलग–अलग परिभाषाएँ दी हैं, जो इस प्रकार है :–

''सामान्यतः आदिवासी या जनजाति ऐसे लोगों को कहा जाता है, जिनका जीवन रीति–रिवाज और व्यवहार के तरीके आदिकालीन विशेषताओं से पूर्ण है।''(1)

''पाश्चात्य विद्वान गिलिन और गिलिन कहते हैं कि स्थानीय आदिवासियों के किसी भी ऐसे समुह को एक जनजाति कहा जाता है जो एक सामान्य क्षेत्र में रहता हो, एक सामान्य भाषा बोलता हो और एक सामान्य संस्कृति के अनुसार व्यवहार करता है।''(2)

आदिवासियों का जीवन, रहन–सहन, संस्कृति, खान–पान, कार्य सामान्य जातियों से भिन्न होता है और यही तरीका उन्हें सभी से अलग करता है। ''विश्व में अधिकतर देशों की जनसंख्या का कुछ भाग जनजातियों से संबंधित है लेकिन भारत के सन्दर्भ में जनजातियों का विशेष महत्व है, यहाँ जनजातियों की संख्या लगभग 9 करोड़ से भी अधिक है।''(3)

भारत के भिन्न–भिन्न राज्यों में जैसे महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान छत्तीसगढ़, झारखण्ड आदि जगहों पर तरह–तरह की आदिवासी जनजातियाँ निवास करती हैं। ''भारत के बड़े राज्यों में छत्तीसगढ़ ऐसा राज्य है, जिसकी कुल जनसंख्या का 40.79 प्रतिशत भाग जनजातिय है।''(4)

अहमद जी उस समय केवल फोटोग्राफी किया करते थे, किन्तु लेखन कार्य से दूर थे। वे जनजातियों की फोटो लेते थे किन्तु उन तस्वीरों के लिए राइटअप कोई और तैयार किया करता था जो अपने अनुसार कुछ फेरबदल कर उनकी ज़िन्दगी को प्रस्तुत करता था। यही वजह है कि उसमें सच्चाई कम एवं काल्पनिकता ज़्यादा नज़र आती थी और अहमद जी को यह लगने लगा कि बेबस आदिवासियों का पूरा सत्य बाहर नहीं आ पा रहा है। तभी से उनके जीवन की वास्तविकताओं को उनके कष्टों को सरकार एवं अन्य लोगों के समक्ष लाने काबीड़ा उन्होंने उठाया। उन्होंने बारीकी से उनके जीवन के प्रत्येक अंग, रीति–रिवाज, धर्म–संस्कृति, पर्व–त्यौहार एवं विभिन्न तरीकों को जीवंतअनुभव कर चित्रण किया। भिन्न–भिन्न जनजातियों के अलग–अलग संस्कारों का देखा–परखा, और तब जाकर उनके विषय में लिखना आरम्भ किया।

''कमार जनजाति के 90 प्रतिशत बच्चे कुपोषण का शिकार होकर बचपन के आँगन में ही किलकारियों के बीच दम तोड़ रहे हैं। कमारों की जनसंख्या 1971 की जनगणना के समय 19,741 थी। 1981 के आते–आते कमारों की जनसंख्या में वृद्धि होने की जगह उनकी संख्या घटकर 14 हजार रह गयी, तब इस जनजाति के संरक्षण के लिए सरकार ने कमार विकास परियोजना की स्थापना की ताकि कमारों को संरक्षण देकर हर स्तर पर उनका विकास किया जावे।''(5)

उपर्युक्त पंक्तियों से यह साफ प्रतीत होता है कि किस प्रकार

**शोध निर्देशक एवं सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग), शासकीय नागार्जुन स्नातकोत्तर विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)*
***शोधार्थी, साहित्य एवं भाषा अध्ययनशाला, पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)*

अहमद जी ने सबका ध्यान इन जनजातियों की ओर खींचने का प्रयास किया है। इस प्रकार इन जनजातियों को लेकर गम्भीर लेखन करने से ये कई लोगों की नाराजगी का पात्र भी बने, किन्तु उन्होंने इन सब बातों की परवाह ना करते हुए अपना लेखन अनवरत जारी रखा। इन्होंने तरह–तरह की जनजातियों के जीवन को अपने लेखन में शामिल किया कि सबके नाम लेना भी सम्भव नहीं है।

आदिवासी बहुल क्षेत्र में जंगलों की कटाई का कार्य निरन्तर गति से चल रहा है, जिससे आदिवासियों की रोजी–रोटी एवं ठिकाना जो जंगलों पर ही आश्रित है, वह छिनता जा रहा है और जो धीरे–धीरे एक विकट समस्या का रूप ले चुकी है, जो न केवल आदिवासी जनजातियों के लिए बल्कि पूरी मानव जाति के लिए एक गम्भीर संकट बन गया है। इस विषय में अहमद जी ने लिखा है – ''पेड़ नहीं रहेंगे तो बदलते मौसम की मार से न आदमी बचेगा और न जानवर, प्रकृति के तेवरों से बचना है तो जंगलों को बचाना होगा, ... यह बहुत बड़ा सवाल है, न केवल रैबारियों के लिए, वरन पूरी मानव जाति और संस्कृति के लिए .....''(6)

एस. अहमद जी ने न केवल इन जनजातियों के दुःख–दर्द एवं कष्टों को दूर से देखा बल्कि उन्हें अच्छी तरह समझने के लिए काफी वक्त उनके साथ बिताया, इसीलिए उनके द्वारा जनजातियों पर किया गया रचनात्मक कार्य सिर्फ कोरी बात न होकर अनुभूत सत्य है। उन्होंने यह जानने की कोशिश की कि आख़िर उनकी मूलभूत आवश्यकताएँ क्या हैं, किस तरीके से उन्हें समाज की मुख्य धारा में लाया जा सकता है एवं इस दिशा में उन्होंने अपनी तरफ से हर प्रयास किया ताकि उनके कष्टों को राज्य सरकार से अवगत कराया जा सके। आदिवासी आज भी दो वक्त के भोजन के लिए जी तोड़ परिश्रम कर रहे हैं, आज भी वे जीवन की मूल आवश्यकताओं, जल, शिक्षा और स्वास्थ्य के लिए कतार में ही लगे हैं, आज भी हर जगह उन्हें अपनी ही जमीन से बेदखल किया जा रहा है, अपने बच्चों का पेट भरना ही उनके जीवन की सबसे बड़ी लड़ाई है आखिर क्यों ?

अहमद जी ने ऐसी जनजातियों के विषय में लिखा है जिनके लिए कुछ करना तो दूर उनके विषय में हर कोई ठीक से जानता भी नहीं है, उनकी आजीविका का प्रश्न लेकर अहमद जी सबके समक्ष आते हैं और यह भी बतलाते हैं कि किस प्रकार उनके पुश्तैनी कार्य से भारत की सांस्कृति धरोहर जुड़ी है। बस्तर के घड़वा कलाकार जो धातुओं से मूर्ति बनाते हैं, साथ ही वहाँ के कुम्हार जो सदियों से तरह–तरह के मिट्टी के अलंकृत पात्र एवं अन्य वस्तुएँ बनाते आ रहे हैं, किन्तु आर्थिक परेशानियों की वजह से इनकी नयी पीढ़ी अपना पुराना कार्य अपनाना नहीं चाहती एवं शहरों की ओर प्रस्थान करने में अपनी रूचि दिखाती है। फलस्वरूप अब ये कलाएँ देखने को नहीं मिलेगी, अगर सरकार की तरफ से कोई पहल होती भी है, तो बिचौलिए सारा लाभ स्वयं हड़प लेते हैं और मेहनत करने वालों की जेब पहले की तरह खाली ही रहती है। अतः इन बिचौलिओं से मुक्ति पाने के लिए भी कुछ कठोर कदम उठाने की आवश्यकता है।

दूसरी तरफ अहमद जी की कहानियों को एक अलग पहलू से देखने पर यह पता चलता है कि उन्होंने दलितों की समस्या को भी सतही तौर पर उठाया है। वे अपनी निजी ज़िन्दगी में भी जाति–प्रथा के विरोधी थे और उनका वही रूप उनकी कहानियों में भी देखने को मिलता है। अधिकतर लेखकों ने अपनी रचनाओं में दलितों की समस्या को उठाया है। 'आरम्भ से ही हिन्दी साहित्य के बहुतेरे लेखकों ने दलित के जीवन को केन्द्र बनाकर कई कहानियाँ एवं उपन्यास लिखे हैं एवं दलित साहित्य को समृद्ध किया है, जिसमें हिन्दी साहित्य के महान लेखक प्रेमचन्द का नाम स्वर्णिम अक्षरों में अंकित है। दलितों को लेकर उन्होंने कफन, ठाकुर का कुँआ आदि बहुचर्चित कहानियाँ लिखीं। अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानी 'खाल खींचने वाले' भी दलितों पर हो रहे अत्याचार को लेकर लिखी गई मार्मिक कहानी है। इसके अतिरिक्त राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, महीप सिंह, ओम प्रकाश बाल्मिकी जैसे लेखकों ने भी दलित शोषण पर बेहतरीन कहानियाँ लिखी हैं।

'छत्तीसगढ़ में सर्वप्रथम गुरु घासीदास ने दलितों के साथ होने वाले जातीय भेदभाव को दूर करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए थे, यही सब देखते हुए अहमद जी ने भी अपनी कहानियों के माध्यम से दलितों के शोषण को दिखाया है एवं कुछ लोगों की ओछी सोच को भी दिखाया है। उन्होंने अपनी कहानी 'काला दिन' के माध्यम से यह दिखाया है कि किस प्रकार दलितों को नीच समझकर हेय दृष्टि से देखा जाता है एवं बात–बात पर उन्हें अपमानित किया जाता है यहाँ तक कि उन्हें अन्य के बर्तन से पानी पीने तक का हक नहीं है। झाड़ू लगाने वाली रामपियरिया जब अपना कार्य ख़त्म कर अनोखे हलवाई की दुकान पर पानी पीने जाती है तो वह हाथ लगाकर पानी पीने के लिए झुक जाती है लेकिन जब अनोखे उसे लोटे में पानी भर कर देता है तो वह भावुक हो जाती है क्योंकि उसके साथ ऐसे प्रेम से पहले किसी व्यवहार नहीं किया था। ''अनोखे ने लोटे में पानी भरा और उसकी तरफ बढ़ा दिया। रामप्यारी ने चौंककर उसकी तरफ देखा। उसे मालूम था कि वह है तो भंगिन।''(7)

इसी तरह उन्होंने अपनी कहानी 'घंटी' भी दलितों को केन्द्रित करके लिखी है। जगेश्वर प्रसाद बड़े अरमानों के साथ नए आफिस में आया था लेकिन पढ़ा–लिखा होने के बावजूद नीची जाति का होने के कारण उसका मजाक बनाया जाता रहा है, क्योंकि वह आरक्षण लेकर आया था और उसके अपने बेटे को बड़ा बाबू बनाने का सपना, सपना ही रह जाता है और उसका पुत्र भी उसकी तरह चपरासी ही बनता है।

अतः हम देखते हैं कि हमारा समाज शिक्षित और आधुनिक होने के बावजूद सोच में रूढ़ विचारों वाला ही है। ''भारतीय जातीय समाज में तभी एकता आ सकती है जबकि इसे जाति विहिन और वर्ग विहिन समाज में बदला जा सके। अब दलित साहित्य उठकर खड़ा हो गया है और उसकी प्रगति को रोकना संभव नहीं है।''(8)

एस. अहमद जी की लेखनी से हमेशा ही गम्भीर मुद्दे प्रकाश में आए हैं। वे जब तक जीवित रहे, अपने लेखन के द्वारा ग़रीब बेबसों, स्त्रियों, आदिवासी जनजातियों एवं दलितों को उनका हक दिलाने के लिए लिखते रहे, यदि आज वे इस जगत में होते तो निश्चित ही उन सभी के उत्थान के प्रयास में लगे होते।

संदर्भ :

*(1) सिंह, कुमार जितेन्द्र (2010) : समकालीन हिन्दी कहानी, वैभव प्रकाशन, पृ. 214. **(2)** वही, पृ. 215. **(3)** वही, पृ. 215. **(4)** वही, पृ. 217. **(5)** अहमद, एस. (2007) : छत्तीसगढ़ की जनजातियाँ बदलता परिदृश्य प्रखर पब्लिशर्स, पृ. 1. **(6)** अहमद, एस. (2015) : जंगल–जंगल बात चली है, नेहा प्रकाशन, 2015, पृ. 19. **(7)** अहमद, एस. (2005) : बन्द दरवाज़े, प्रकाशन संस्थान, पृ. 88. **(8)** मिश्र, राजेन्द्र (2009) : कहानी आंदोलन और प्रवृत्तियाँ, तक्षशिला प्रकाशन, पृ. 146–147.*

❁❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Refereed Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 171, Vol - XVII (4), June - 2018, Page No. 108-109
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

गढ़वाल हिमालयी लोक कथाओं एवं अन्य लोक कथाओं में समानता के तत्व

प्रस्तुत शोधपत्र में गढ़वाल हिमालयी लोक कथाओं एवं अन्य लोक कथाओं में समानता के तत्वों पर विचार किया गया है। पृथक्-पृथक् लोकभाषा के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उनमें समानता के अनेक तत्व विद्यमान हैं। लोक की सामूहिक चेतना इसका एक प्रमुख कारण है। साहित्य में सबसे अधिक समानता लोक कथाओं में दिखाई देती है। यह तथ्य आश्चर्यजनक है कि विश्वभर की अनेक लोक कथाओं की आत्मा एक ही दिखाई देती है।

डॉ.डी.एस.भण्डारी

लोकभाषा के साहित्यों में पर्याप्त समानता मिलती है। गढ़वाल हिमालयी लोक कथाओं की अन्य भाषाओं की लोक कथाओं से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि इनमें एवं अन्य लोक कथाओं में पर्याप्त समानता के तत्व मिलते हैं। लोक कथाओं में समानता मिलने के कारण पर डॉ. गोविन्द चातक कहते हैं कि, ''लोक कथाओं का निरन्तर भौगोलिक प्रसार होता रहता है और सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि लोकमानस ने प्रायः सभी क्षेत्रों में मानक अभिप्रायों अथवा कथानक रूढ़ियों की रचना की है। इसके पीछे जहाँ कई और कारण भी सक्रिय कहे जा सकते हैं, वहाँ लोक की सामूहिक चेतना या सामूहिक मानस को भी एक बहुत बड़ा कारण माना जा सकता है।''[1] इस प्रसार के सम्बन्ध में डॉ0 सत्येन्द्र कहते हैं कि, पुरूष जाति का पोषण क्षेत्र हिमालय रहा और वहीं से वह विश्व में फैली।[2] अनेक साहित्यकार यह स्वीकार करते हैं कि यदि किसी भी भाषा के कथानकों, उसके कथा मानक रूपों और अभिप्रायों को देखने का प्रयास करते हैं, तो मानव मानव के बीच मनोवैज्ञानिक एकता मिलती है। डॉ0 चातक कहते हैं कि, समान विकास की अवस्थाओं के बीच समान कारक कार्य करते हैं। लिखित साहित्य किसी एक रचनाकार की ही देन होता है, किन्तु लोक साहित्य में पूरी परम्परा निहित होती है, जिसमें सभी प्रदेश, देश और क्षेत्र मिलकर एक सांस्कृतिक इकाई बन जाते हैं।[3]

यह तथ्य किसी भी साहित्यकार को आश्चर्जनक प्रतीत हो सकता है कि गढ़वाल हिमालय की लोक कथाओं की तुलना यदि भारत के विभिन्न जनपदों की कथाओं से की जाती है। तो मात्र इनमें ही समानता नहीं दिखाई देती, वरन् विश्व की लोक कथाओं से भी समानता दिखाई देती है। विश्व की लोककथाओं में समानता के तथ्य को सभी स्वीकार करते हैं, इनकी आत्मा एक ही दिखाई देती है। लोक कथाओं के विषय, कथानक, शैली, पात्र और उद्देश्यों में मौलिक एकता दिखाई देती है। राजा की सन्तान न होना, सन्तान प्राप्त करने के लिए उसका तप करना, उसका वरदान प्राप्त करना, सौतिया डाह, सौतिया डाह के कारण नवजात शिशु को छुपाना उसकी हत्या करना या नदी में बहा देना, रानी को देश निकाला दिया जाना और रहस्य खुलने के बाद पुनर्मिलन होना–इस प्रकार के कथानक भारत के सभी जनपदों की लोककथाओं में एक समान रूप से पाये जाते हैं।[4] आसाम की लोककथा नारा राजकुमारी[5] कश्मीर की दो राजकुमारी[6] नेपाल की लोक कथा कमलों के स्वर[7] पंजाब की लोक कथा सौ साल की नींद[8] लोककथाओं की तुलना की जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि मात्र एक कथा का ही विभिन्न लोक भाषाओं में अनुवाद किया गया है। गढ़वाल में भी इसी प्रकार की लोक कथाएं मिलती हैं। डॉ0 गोविन्द चातक कहते हैं कि बच्चे के बजाय बट्टा या पत्थर पैदा करने की बात में षड्यन्त्र होता था, पर अनेक कथाओं में स्त्री के गर्भ से मेंडा, सांप आदि के पैदा होने की असंभव बात कही गई है, आश्चर्य की बात यह है कि कथाओं में स्त्री की तरह ही चलते–फिरते हैं, कई महान कार्य करते हैं, और फिर कभी किसी विशेष युक्ति से अंततः मनुष्य बन जाते हैं।[9] सौतेली माँ के अत्याचारों की अनेक लोक कथाएँ भी विभिन्न लोक भाषाओं में मिलती हैं। सौतेली माँ के अत्याचारों की कहानियाँ भी सर्वत्र एक समान ही मिलती है। अवध की लोक कथा माँ की ममता[10] गुजराती की सच्चा सपूत[11] राजस्थान की फुलन्ती देश[12] एवं गढ़वाल की विमाता सम्बन्धी अनेक लोक कथाओं में पर्याप्त समानता दिखाई देती है। विमाता सम्बन्धी लोक कथाओं में डॉक्टर चातक ने एक लोककथा का विशेष उल्लेख किया है, जिसमें कहा गया है कि एक राजा और रानी सुखपूर्वक अपने बच्चों के साथ जीवन यापन कर रहे थे, कि रानी बीमार हुई। उनके घर के सामने गौरेय्या का घोंसला था, उस पर बच्चे थे, पर उनकी माँ दो दिन

विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग), बालगंगा महाविद्यालय, सेन्दुल (केमर) - टिहरी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

पहले मर चुकी थी। नई माँ आई तो वह उन बच्चों को मारने लगी। यह देखकर रानी बहुत उदास हो गई। राजा ने कारण पूछा तो रानी ने कहा कि मेरे मर जाने के बाद तुम नई रानी लाओगे तो वह भी मेरे बच्चों को मारेगी, इसलिए तुम ब्याह न करना, परन्तु रानी की मृत्यु के बाद राजा ने विवाह कर लिया और लोक में विमाता के अत्याचारों की कथा प्रकाश में आई। डॉ. चातक कहते हैं कि पक्षी के सामान्तर प्रसंग के माध्यम से भाव को सजीव और प्रभावयुक्त बनाने की यह कला गुजरात की एक लोककथा सच्चा सपूत में भी दर्शनीय है।[13]

पशु–पक्षियों की मानव के प्रति सहानुभूति की जो लोक कथाएँ हैं, वह भी विभिन्न लोक भाषाओं में एक समान कथानक और भावों को साथ लेकर चलती हैं। गढवाल में चन्द्रावली की कथा बहुत प्रसिद्ध है। राजा को तपस्या के बाद पुत्र की प्राप्ति होती है। ज्योतिषी कहते हैं कि जन्म के पाँच दिन में ही इसका विवाह किया जाना चाहिए और राजा के मंत्री ने धोखे से चन्द्रावली का विवाह धोखे से उस पाँच साल के बालक से कर दिया। चन्द्रावती को जब यह ज्ञात हुआ तो, वह सहज भाव से उसे अपना पति स्वीकार करती है और भगवान की भक्ति से वह अपने उस बालक पति को पूर्ण पुरूष बना लेती है। बंगाल की प्रसिद्ध लोककथा मालंचमाला और पुष्पमाला[14] ठीक इसी प्रकार के कथानक की लोक कथाएँ हैं।

कुछ लोक कथाएँ तो ऐसी प्रतीत होती हैं कि एक ही कथा को अलग–अलग लोक भाषाओं में अनुवाद कर दी गई है। गढ़वाल की प्रसिद्ध हास्य कथा टोखण्या छोरा अधव में काना भाई, आसाम में भोला दामाद और मालवा में दडा पटेल और पंजाब में मोला नाम की कथाओं में समानता मिलती हैं। हास्य कथाओं अन्य जनपद की लोककथाओं से साम्यता दिखाई देती हैं। आसाम और अवध की मौर्ख्य कथाओं एवं गढ़वाल की मौर्ख्य कथाओं में बहुत समानता दिखाई देती है। शैलेश मटियानी ने बारामंडल की लोक कथाओं मे सुन्दर सपना नामक लोककथा की अन्य लोककथाओं से समानता दिखाई है।

स्त्रियों के पतिव्रत सम्बन्धी लोककथाएं भी सभी लोकभाषाओं में एक समान ही मिलती है। परकीया या अवैध प्रेम सम्बन्धी लोक कथाओं में भी प्रर्याप्त समानता दिखाई देती है। डॉ. सत्येन्द्र कहते हैं कि गढ़वाल की ऐसी लोक कथाओं का मानक रूप ब्रज की ठाकुर राम प्रसाद की लोककथाओं से बहुत मेल खाता है।[14]

राक्षस सम्बन्धी कथाओं में पर्याप्त समानताएँ दिखाई देती हैं। मनुष्य और राक्षसों के संघर्ष की लोक कथाएँ अन्य लोक कथाओं, की तुलना में लोकप्रिय मानी जाती हैं। गढ़वाल की लोककथाओं की तुलना आदिवासियों की लोक कथाओं, और आसाम की लोकथाओं से करने पर ज्ञात होता है कि अनेक लोक कथाओं के कथानक पूर्णतया समान हैं। साहित्यकारों का मानना है कि इस साम्य का कारण यह है कि आदिम मानव जहाँ भी रहा है, उसके विकास के एक समान माध्यम रहे हैं। साथ ही जीवन और जगत को उसने एक ही भाव से समझने का प्रयत्न किया है।

संदर्भ :

(1) चातक, डॉ0 गोविन्द : भारतीय लोक संस्कृति का सन्दर्भ मध्य हिमालय, पृ. 379.

(2) *डॉ0 सत्येन्द्र : लोक साहित्य विज्ञान, पृ. 40.*

(3) *चातक, डॉ0 गोविन्द : भारतीय लोक संस्कृति का सन्दर्भ मध्य हिमालय, पृ. 380.*

(4) *चातक, डॉ0 गोविन्द : भारतीय लोक संस्कृति का सन्दर्भ मध्य हिमालय, पृ. 380.*

(5) *व्यास, श्रीकान्त : आसाम की लोक कथाएँ, पृ. 38.*

(6) *चत्ता, नन्द लाल : काश्मीर की लोक कथाएँ, पृ. 42.*

(7) *चातक, डॉ0 गोविन्द : नेपाल की लोक कथाएँ।*

(8) *पंछी, प्रीतम सिंह : पंजाब की लोक कथाएँ।*

(9) *चातक, डॉ0 गोविन्द : उत्तराखण्ड की लोक कथाएँ, सूर्यदेव, भूमिका से।*

(10) *वत्स, शिवमूर्ति सिंह : अवध की लोक कथाएँ, पृ. 5.*

(11) *व्यास, श्रीकान्त : गुजरात की लोककथाएँ, पृ. 13.*

(12) *मेनरिया, पुरूषोत्तम : राजस्थान की लोक कथाएँ, पृ. 34.*

(13) *चातक, डॉ0 गोविन्द : भारतीय लोक संस्कृति का सन्दर्भ मध्य हिमालय, पृ. 381.*

(14) *डॉ0 सत्येन्द्र : ब्रज की लोक कहानियाँ, पृ. 49.*

❁❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Refereed Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 171, Vol - XVII (4), June - 2018, Page No. 110-111
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

पंडित स्वराज्य प्रसाद त्रिवेदी के निबंधों का विश्लेषण

प्रस्तुत शोधपत्र में पं.स्वराज्य प्रसाद त्रिवेदी के निबंधों का विश्लेषण किया गया है। उन्होंने अपने जीवन में शताधिक निबंध लिखे और वे बहु-लोकप्रिय भी हुए, किन्तु उनके निबंधों का कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ। उन्होंने अपने निबंधों का कोई व्यवस्थित अभिलेख भी नहीं रखा, किन्तु उनके सहकर्मी श्री कुमार साहु, श्री देवी प्रसाद 'बच्चू जांजगीरी' आदि ने बार-बार यह उल्लेख किया है कि पं. त्रिवेदी ने छत्तीसगढ़ में साहित्य एवं पत्रकारिता की अलख जगाते हुए, कविताओं और कहानियों के साथ निबंधों की रचना की है, जो उनके प्रदेय की महत्ता को रेखांकित करते हैं। इस प्रकार हम पाते हैं कि पं.त्रिवेदी के प्रारंभिक निबंधों में जहाँ ललित निबंध जैसे युक्त उड़ान है, अतीत और लोक-संस्कृति के प्रति आग्रहशीलता है, वहीं बाद में तर्क प्रधान चिंतन भी है। उनमें वैचारिकता और यथार्थता का समन्वय बना रहता है।

डॉ.बृजेंद्र पाण्डेय* एवं श्रीमती सीमा चंद्राकर**

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में पूरे भारत में परिवर्तन की एक लहर उभरकर आने लगी थी। सामंती ढांचा टूटना शुरू हो गया था और देश में एक शिक्षित मध्य वर्ग तैयार हो रहा था जो राष्ट्रीय सामाजिक हितों पर विचार करता था। इस वर्ग ने यह अनुभव किया कि जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन और सुधार की आवश्यकता है। हिंदी साहित्य के प्रमुख रचनाकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसी समय अपने निबंधों, नाटकों और भाषणों के माध्यम से सांस्कृतिक जागरण का संदेश दिया। उनके सहयोगियों और साथियों ने जहाँ सांस्कृतिक जागरण का संदेश प्रसारित किया वहीं अपनी सृजनात्मकता से हिंदी गद्य का मार्ग प्रशस्त किया।''[1] यह उल्लेखनीय है कि उन्नीसवीं शताब्दी के पहले हिंदी गद्य का वह रूप सामने नहीं आया था जिस रूप में वह आज प्रयुक्त किया जाता है। हिंदी साहित्य इतिहास के भारतेन्दु युग में हिंदी गद्य का बहुमुखी विकास हुआ था।

भारतेन्दु–युग में सबसे अधिक सफलता निबन्ध–लेखन में प्राप्त हुई। निबन्धों का सम्बन्ध पत्र–पत्रिकाओं से सीधे जुड़ा हुआ था। लेखकों के सामने अनन्त विषय थे। राजनीति, समाज–सुधार, धर्म, अध्यात्म, आर्थिक दुर्दशा, अतीत का गौरव, महापुरुषों की जीवनियां आदि विषयों पर विचार प्रकट करते हुए भारतेन्दु–युग के लेखकों ने विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से निबंध–साहित्य को खूब समृद्ध किया। वस्तुतः अन्य गद्य–विधाओं में विचारों को सीधे व्यक्त करने की छूट नहीं होती, जबकि निबन्धों में शैली के आकर्षण एवं कथन की भंगिमा के वैशिष्ट्य को बनाये रखकर भी किसी विषय पर सीधे बात की जा सकती है। निबन्धों का आरम्भ भारतेन्दु से ही मान्य होना चाहिए।''[2]

आचार्य शुक्ल ने बताया कि निबंध कई प्रकार के हो सकते हैं– विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक। प्रवीण लेखक प्रसंग के अनुसार इन विधानों का बड़ा सुन्दर मेल भी करते हैं।''[3] उन्होंने निबंध साहित्य के विकास में भारतेन्दु और द्विवेदी युग में प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिकाओं की योगदान को उल्लेखनीय बताया था। उनका कथन था कि इन मासिक पत्रिकाओं में अच्छे निबंध प्रकाशित हुए। इस लिहाज से उन्होंने पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी, पंडित माधव प्रसाद मिश्र, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पंडित गोविंदनारायण मिश्र, बाबू श्याम सुन्दर दास, पंडित चंद्रधर गुलेरी, अध्यापक पूर्णसिंह और बाबू गुलाब राय का विशेष उल्लेख किया है।''[4]

जहाँ तक पंडित स्वराज्य प्रसाद त्रिवेदी के निबंध साहित्य का प्रश्न है, यह गौर करना समीचीन होगा कि उनकी साहित्यिक साधना 1933 से प्रारंभ हो गयी थी और उनकी कविताएँ प्रमुख पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थी। जब पंडित त्रिवेदी ने साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया तब उनके सामने भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग की उपलब्धियाँ थीं। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि पंडित त्रिवेदी का जन्म स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के परिवार में हुआ था और वे स्वयं स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भागीदारी कर रहे थे। इस तरह राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण पारिवारिक वातावरण और स्वतंत्रता संग्राम के दौर में पंडित त्रिवेदी ने अपना रचनाकर्म प्रारंभ किया था। पंडित त्रिवेदी ने यह स्वीकार किया था कि उनकी रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना, छायावाद और फिर प्रतीकवाद का प्रभाव रहा।''[5]

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि निबंध विधा के विकास में पत्रिकाओं का योगदान था। श्री त्रिवेदी के कृतित्व विकास पर दृष्टिपात करने से हम पाते हैं कि युवाकाल से ही वे ''आलोक'' जैसी साहित्यिक पत्रिकाओं और ''अग्रदूत'' जैसे राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण समाचार पत्रों के संपादन से सम्बद्ध हो गए थे। उन्होंने अपने समाचार पत्र संपादन में साहित्यिक चेतना से परिपूर्ण रखा था। काव्य साधना और पत्रकारिता के इसी प्रारंभिक दौर में श्री त्रिवेदी का पंडित माखन लाल चतुर्वेदी, श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और पंडित सुन्दर लाल त्रिपाठी से निकट का संपर्क था और उनके

**शोध निर्देशक एवं सहायक प्राध्यापक, मानव संसाधन विकास केन्द्र, पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)*
***शोधार्थी एवं सहायक प्राध्यापक, गुरुकुल महिला महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)*

आदर्श पंडित माधवराव सप्रे थे। ये चारो ही वरिष्ठ साहित्यकार अपनी साहित्य पत्रकारिता और विशेषकर निबंध लेखन के लिए विख्यात थे। पंडित सप्रे ने 'छत्तीसगढ़ मित्र' पंडित चतुर्वेदी ने 'कर्मवीर', श्री बख्शी ने 'सरस्वती' और पंडित त्रिपाठी ने 'उत्थान' पत्रिका के माध्यम से हिंदी साहित्य में अपनी अलग पहचान स्थापित की थी। पंडित त्रिवेदी के रचनाकर्म में– विशेषकर निबंध लेखन में इन साहित्यकारों का प्रभाव स्पष्ट दिखता है।

पंडित त्रिवेदी द्वारा राष्ट्रीय, धार्मिक पर्वों तथा राष्ट्रीय नेताओं की जयंतियों के अवसर पर लिखे गये निबंध देश की अनेक प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में छपते रहे हैं। राष्ट्रीय नेताओं के जीवन पर उनके द्वारा लिखे हुए निबंध महत्वपूर्ण संदर्भ के रूप में आज भी प्रासंगिक हैं। आकाशवाणी के विभिन्न केंद्रों से विभिन्न विषयों पर वार्ताओं के रूप में निबंध बुद्धिजीवियों का ध्यान आकर्षित करते रहे हैं। छत्तीसगढ़ की लोक–संस्कृति, छत्तीसगढ़ का पुरातन इतिहास, छत्तीसगढ़ के रीति–रिवाजों आदि के संबंध में विभिन्न सामयिक पत्र–पत्रिकाओं में इनके निबंध समय–समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। ''छत्तीसगढ़ में विदेशी यात्री'' नामक उनका निबंध आज भी अत्यंत महत्वपूर्ण संदर्भ सामग्री के रूप में स्थापित है। जन कल्याणकारी योजनाओं से संबंधित विभिन्न विषयों और समस्याओं पर लिखे गए अनके निबंध आज भी ललित और पठनीय हैं।

त्रिवेदी जी की एक प्रारंभिक रचना ''तरूणों से'' 4 जुलाई, 1942 की है, जो ''अग्रदूत'' में प्रकाशित हुई थी। उसका एक अंश इस प्रकार है जिससे त्रिवेदी जी की प्रारंभिक साहित्यिक चेतना का संकेत मिलता है – ''तरूणों से भी हमें बहुत–कुछ कहना है। देश की इस गंभीर परिस्थिति में तरूणों की जवाबदारी बढ़ी–बढ़ी है। अब वे बुजुर्गों पर सारा बोझ छोड़कर निश्चित मौज नहीं उड़ा सकते। स्वराज्य यों ही नहीं मिल जाता। कुछ तो करना ही पड़ेगा। आज संसार में स्वतंत्रता के नाम पर कितने राष्ट्रों के युवक प्राणों का बलिदान नहीं कर रहे हैं?स्वराज्य की देवी ही ऐसी है। वह बलिदान चाहती है।''[6]

पंडित त्रिवेदी द्वारा रचित ''आवाज दो हम एक हैं'' निबंध भी भाषा और राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से उल्लेखनीय है, जो ''अग्रदूत'' में 14 जुलाई, 1986 को प्रकाशित हुआ था।

जिस देश के संविधान में धर्म निरपेक्षता के लिए प्रतिबद्धता संकल्पित की गई है। उसी देश के नागरिक साम्प्रदायिकता ही नहीं अपितु जातीयता, क्षेत्रीयता और भाषागत की आंधी के चक्रव्यूह में फंसकर सर्वोपरि राष्ट्रीय हित को विस्मृत कर दें इससे बड़ी त्रासदी और क्या हो सकती है?''[7]

त्रिवेदी जी के निबंधों की यह एक विशेषता रही है कि उनकी भाषा सरल, तथ्यपरक और सुगम्य रही है। उनका मानना है कि ''निबंधों की भाषा ऐसी होनी चाहिए जो साधारण पाठक की समझ में आ सकें। अत्यंत कठिन शब्दों की भाषा गरिष्ठ भोजन के समान होती है जिसे एकदम से पचा पाना बहुत मुश्किल होता है। दूसरे अर्थों में निबंधों की भाषा इतनी सरल हो कि पाठक का तादात्म्य उससे तत्काल हो जाये।'' इस संदर्भ में ''महाकोशल'' में 1 सितम्बर, 1981 को प्रकाशित निबंध ''तनाव बनाम विकास'' का एक अंश द्रष्टव्य है– ''इन दिनों विश्व के अनेक स्थानों और स्वयं अपने देश में जो घटनायें हो रही है उनसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि जहां एक ओर कुछ विदेशी ताकतें विश्व–शांति की बुनियाद को मजबूत करने के बजाय उसे खोखला करने पर उतारू हैं वहीं दूसरी ओर विकासशील देश दैवी, प्राकृतिक और मानवी आफतों से जूझते हुए सर्वतोमुखी विकास के लिये जीतोड़ कोशिश कर रहे हैं।'[8]

श्री त्रिवेदी की काव्यधारा सतत् प्रवहमान रही। इस संदर्भ में ''महाकोशल'', 9 फरवरी,1981 को प्रकाशित उनके निबंध ''वीरों का कैसा हो बसन्त?'' का एक अंश यहां उद्धृत है– ''बसन्त के इस पर्व पर जाने कितनी कितनी यादें उभर उठती है। यद्यपि देश पराधीन था, ब्रिटिश हुकूमत का सूरज मध्यान्ह के सूरज की भांति तप रहा था फिर भी बंधनों, अभिशापों, अभावों के बीच से भी पर्व का बसन्ती रंग झलक तो उठता ही था।

उठ और बसन्त मना ले/तू आग में बाग लगा दे।''[9]

''मध्यप्रदेश में विकास के चार बड़ी योजनाओं के निर्माण के संदर्भ में उनका लिखा गया यह निबंध ''मध्यप्रदेश के चारधाम'' 1961–62 में रेडियो से तो प्रसारित हुआ ही था बाद में वह अनेक पत्र–पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुआ था। उस निबंध का एक अंश इस प्रकार है– ''इतिहास साक्षी है कि भारतवासी जब कभी किसी संकट की स्थिति में घिर जाते थे तब वे मंदिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों अथवा गुरूद्वारों की शरण में जाकर अपने ऊपर आये हुए संकट को दूर करने के लिये प्रार्थना किया करते थे। यह भावना आज भी चली आ रही है। आज भी किसी मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर या गुरूद्वारा को देखते ही हमारा मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। फिर तीर्थस्थानों का क्या कहना?

यह एक संयोग है कि पंडित स्वराज्य प्रसाद त्रिवेदी ने अपने जीवनकाल में शताधिक निबंध लिखे और वे बहु लोकप्रिय भी हुए, किंतु उनके निबंधों का कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ। उन्होंने अपने निबंधों का कोई व्यवस्थित अभिलेख भी नहीं रखा किंतु उनके सहकर्मी श्री कुमार साहु, श्री देवी प्रसाद 'बच्चू जांजगीरी' आदि ने बार–बार यह उल्लेख किया है कि पंडित त्रिवेदी ने छत्तीसगढ़ में साहित्य और पत्रकारिता की अलख जगाते हुए, कविताओं और कहानियों के साथ निबंधों की रचना की जो उनके प्रदेय की महत्ता को रेखांकित करते हैं। इस लिहाज से देखें तो हम पाते हैं कि पंडित त्रिवदी के प्रारंभिक निबंधों में जहां ललित निबंध जैसे युक्त उड़ान है, अतीत और लोक संस्कृति के प्रति आग्रहशीलता है वहीं बाद में तर्क प्रधान चिंतन भी है। उनमें वैचारिकता और यथार्थता का समन्वय बना रहता है। उनके विचार प्रधान निबंधों में भी समप्रेषिणता रहती है। उन्होंने 1935 से लेखन प्रारंभ किया था इसलिए उनकी भाषा में निरंतर परिष्कार होता रहा और उनकी शैली आदर्श और रोमानी से यथार्थ और चिंतक परक होती चली गई। यह कहना उचित होगा कि पंडित त्रिवेदी अपनी प्रारंभिक लेखनकाल से अंत तक लगातार नये आयामों को उद्घाटित करते रहें।

संदर्भ :

*(1) डॉ.नगेन्द्र : हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 474. **(2)** 2. वही, पृष्ठ 482. **(3)** शुक्ल, आचार्य रामचंद्र : हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 300. **(4)** वही, पृष्ठ 311. **(5)** 'महत्व' में डॉ. खेमराज मगरदे के साथ साक्षात्कार, पृष्ठ 45. **(6)** 'अग्रदूत', रायपुर दिनांक 04 जुलाई, 1942 का अंक। **(7)** 'अग्रदूत', रायपुर दिनांक 14 जुलाई, 1986 का अंक। **(8)** 'महाकोशल', रायपुर दिनांक 01 सितम्बर, 1981 का अंक। **(9)** 'महाकोशल', रायपुर दिनांक 09 फरवरी, 1981 का अंक।*

❁❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Refereed Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 171, Vol - XVII (4), June - 2018, Page No. 112-113
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

समकालीन समाज की अभिव्यक्ति - 'धरा अंकुराई'

प्रस्तुत शोधपत्र में असग़र वजाहत की उपन्यास त्रयी के अंतिम भाग 'धरा अंकुराई' में समकालीन समाज की अभिव्यक्ति की पड़ताल की गई है। 'धरा अंकुराई' समाज की कश्मकश के महाकाव्य के रुप में सामने आया है। यह उपन्यास व्यवस्था के घटाटोप अंधेरे में उम्मीद की एक किरण दिखाता है, बशर्ते सैयद साजिद अली जैसा अन्तःयात्रा का संकल्प हो, क्योंकि इस अन्तःयात्रा से व्यवस्था में बदलाव संभव है। वास्तव में असग़र वजाहत का यह उपन्यास ज्ञानयात्रा है, अनेक विवरणों, वृत्तान्तों के माध्यम से देश को जानने और समझने की। उनकी रचनाओं में जीवन का यथार्थ रुप अपने-अपने परिवेश के साथ दीप्तिमान हुआ है। उनकी यही विशेषता समकालीन हिन्दी साहित्यकारों की शृंखला में उन्हें श्रेष्ठ स्थान प्रदान करती है।

संगीता पाटिल

असग़र वज़ाहत वह चर्चित नाम है, जो किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। एक रचनात्मक प्रवीण लेखक के रूप में इनको मिली लोकप्रियता लंबी अवधि तक किए गए इनके अथक श्रम की देन है। जिन–जिन विधाओं में उन्होंने रचनात्मक हस्तक्षेप किया, उनमें अपनी प्रतिभा की मुहर लगायी। हमेशा से ही कुछ अलग, कुछ प्रयोगशील यथार्थ चित्रित करते हैं, यही वजह है कि उनकी रचनाएँ स्मृतिपटल से ओझल ही नहीं हो पाती, वे स्थायी रूप से हृदय में विद्यमान रहती हैं। उनकी रचनाएँ जीवन की समस्याओं, पीड़ा एवं परेशानियों की उपज है। वज़ाहतजी व्यक्ति की निजता के साथ उसकी सामाजिक भूमिका को अपनी रचनाओं की विषयवस्तु बनाते रहे हैं। 'कैसी आगी लगाई', 'बरखा रचाई' एवं 'धरा अंकुराई' त्रयी से उनका रचना स्वभाव अधिक प्रशस्त हुआ है।

'धरा अंकुराई' उपन्यास की कथा दो अलग–अलग स्तर पर चलती है। एक भाग में समाज के यथार्थ चित्रण की और दूसरे भाग में उपन्यास के केन्द्रिय पात्र साजिद अली के व्यक्तिगत जीवन की।

एस.एस. अली यानी सैयद साजिद अली दिल्ली के बहुत माने हुए पुराने अखबार 'द नेशन डेली में एसोसिएट एडिटर थे। साजिद ने कामयाब जिन्दगी जी है, लेकिन महसूस करते हैं कि उनके भीतर एक खालीपन फैलता जा रहा है। उन्हें लगता है कि अब तक जिया सब बेमकसद रहा। वे 'जिन्दगी का अर्थ' समझने के लिए उसी छोटी सी जगह लौटते हैं, जहाँ से निकलकर वे जाने कहाँ कहाँ गए थे।

इन परिस्थितियों से व्याकुल साजिद गहन चिंतन में खोये रहते हैं, खुद से बातें करते हैं, ''क्या मैं यहाँ गुजरे हुए जमाने की तलाश में आया हूँ? हरगिज नहीं, क्योंकि मैं जानता हूँ, अतीत कल्पना में ही जीवित रहता है, उसे खोजना बेकार है और दूसरी यह कि अतीत हर पीढ़ी के लिए मूल्यवान होता है, वर्तमान से हर पीढ़ी असन्तुष्ट रहती है और भविष्य को लेकर अपार शंकाएँ होती हैं। मैं इस घीसे–पिटे चक्कर में पड़ने नहीं आया हूँ। तो फिर यहाँ आने का मकसद ? ये बड़ा सवाल है। बड़े सवालों को जल्दी हल नहीं करना चाहिए। छोटे–छोटे सवालों और उनके जवाबों से ही बड़े सवाल और उनके हल निकलते हैं।''(1)

साजिद के माध्यम से लेखक ने समाज का यथार्थ चित्रण छोटे–छोटे सवालों के रूप में उजागर किया है। शहर में खेतो को कॉलोनी बना देने से हजारों मकानो का जाल चारों तरफ फैल गया है। कॉलोनी बनाने वाले ने करोड़ों बनाए हैं, लेकिन इन कॉलोनियों में बनती गन्दी गलियाँ, नालियाँ भी हैं, कूड़े के ढेर हैं और उस पर ढ़ेरों मच्छर पनपते हैं, इस पर लेखक का चिंतन मात्र इसी शहर के लिए ही नहीं, वह तो पूरे देश लिए है, ''कूड़ा–कूड़ा और कूड़ा। यह हमारे प्यारे शहर तक सीमित नहीं है। दिल्ली से कलकत्ता और केरल तक रेल की पटरियाँ के दोनों तरफ कूड़े के पहाड़ खड़े कर दिए हैं। लगता है, पूरा देश भी इस कूड़े को साफ नहीं कर सकता। कुछ सालों बाद हिन्दुस्तान को कूडिस्तान कहा जाने लगेगा। यहाँ ऐसी बीमारियाँ फैलेंगी, जिनका नाम भी लोगों ने न सुना होगा और इन बीमारियों का कोई इलाज न होगा।''(2)

शहर में नेताओं का वर्चस्व है, बड़े शासकीय कर्मचारियों में रौब–दाब और अलग–अलग तरह के माफिया सरगुनाओं की तूती बोलती है। ''पिछले चार दशक में माफिया शब्द हमारी भाषा में जितना प्रचलित हुआ है, उतना कोई और शब्द शायद नहीं हुआ है। माफिया के बाद घोटाला शब्द आता है और उसके भ्रष्टाचार–माफिया के अर्थ व्यापक हो गए और उसकी अकल्पनीय श्रेणियाँ —– भू माफिया, के साथ शिक्षा माफिया, मेडिकल माफिया, जंगल माफिया, ट्रांसपोर्ट माफिया, न्याय माफिया, ठेकेदार माफिया, मछली माफिया जैसे तमाम माफिया सक्रिय हैं, यानी सबकुछ का अपराधीकरण हो गया है।''(3)

माफियाकरण केवल छोटे कस्बों या शहरों की विशेषताएँ नहीं, बल्कि देश में जो कुछ है, उसके दर्शन यहाँ होते हैं। कुछ भी व्यवस्थित नहीं है, सब टूटा हुआ, बिगड़ा हुआ है। किसी को कोई फर्क नहीं पडता है। केन्द्रीय सरकार की योजताएँ आँगनबाड़ी और

शोधार्थी, शासकीय वी.वाय.टी.स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, दुर्ग (छत्तीसगढ़)

मिड–डे–मील की वास्तविकता कुछ इस तरह से नजर आती है– ''आंगनबाड़ी बच्चों के वेल्फेयर का प्रोग्राम है न ? –''सर ऐसा बढ़िया प्रोग्राम है, कागज पर कि आप देख ले तो दंग हो जाए –– पर कागज पर ही दंग होंगे ––– व्यवहार में देखेंगे तो शर्म आएगी –– हाँ अब हमारे देश में दंग और शर्म के एक ही अर्थ है –– ताला। आँगनबाड़ी के दरवाजे पर ताला बन्द था –– सोचता हूँ हमारी राष्ट्रीय चिन्ह बन्द ताला होना चाहिए, शेर की तीन मूर्तियों की जगह एक बन्द ताला होना चाहिए। यह देश की अस्मिता को अच्छी तरह प्रदर्शित करेगा। पूरे शासन का जोर 'मिड–डे–मिल' पर रहता है –और उसी के नाम पर सब घपले होते हैं, ऊपर से नीचे तक बन्दरबाँट होती है।''(4)

असल में छोटे शहरों में कहे या हमारे देश में सभी क्षेत्र में जिसकी सत्ता होती है, वह हर क्षेत्र में अपना वर्चस्व मानता है– ''उनके क्षेत्रों में जो कुछ भी होगा, वही करेंगे, वही जाँचे और परखेंगे। किसी बाहरी व्यक्ति को कोई इजाजत नहीं है कि दखल दे – ये लोग नए युग के जमींदार है। इनके हाथ में संविधान की ताकत है, ये लोकतंत्र के नुमाइन्दे हैं। भारत सरकार इनके माध्यम से गाँवों तक पहुँचती है। विकास की सारी योजनाओं के सूत्र इनके हाथों में है। यही आँगनबाड़ी चलाते हैं, यही मनरेगा संचालित करते हैं, यही स्वास्थ्य केन्द्रों की निगरानी करते हैं, यहीं ग्रामीण बैंकों के संचालक हैं और यही एम.एल.ए. या एम.पी. के दाहिना हाथ माने जाते हैं। प्रशासन इनके प्रभाव में है, वह जानता है कि इनके बिना कुछ नहीं हो सकता ––यही लोग पुलिस और जनता के बीच 'संवाद' का माध्यम बनते हैं। संवैधानिक ताकत के अलावा इनके पास 'बाहुबल' भी है। अपनी जाति, बिरादरी या अपने गुंडों के माध्यम से अपने हित साधते हैं। इनके पास पैसा है, क्योंकि विकास के नाम पर करोड़ों खपत की बन्दरबाँट में ये पहली कड़ी माने जाते हैं। इन लोगों को 'बाईपास करके आप कहाँ जाएँगे? फिर–फिर दिल्ली रूपी शर्मगाह के दरवाजे तो तुम्हारे लिए खुले है।''(5)

गाँवों में असुविधाओं और, रोजगार न मिलने कारण उत्पन्न असुरक्षा के वातावरण ने गाँवों के लोगों को शहर का रास्ता दिखाया, परिणामतः गाँव से शहर की तरफ पलायन तेजी से हुआ है। शिक्षा व्यवस्था की स्थिति चिंतनीय तो है ही, साथ ही 'न्याय के मंदिर का हाल भी अनोखा है। सच को झूठ और झूठ को सच दर्शाने वाला यह पेशा भी सामाजिक समस्याओं का पिटारा है। असग़र वजाहत लिखते हैं – ''शहर में जितनी तादाद वकीलों की है, उतनी किसी पेशे से ताल्लुक रखने वाले लोगों की नहीं है। – हमारे देश के इतिहास में उनका अभूतपूर्व योगदान है। देश को बनानेवाले भी वही है और देश को तोड़नेवाले भी वही थे – पता नहीं क्यों, कब, कहाँ किस तरह वकीलों के लिए काला रंग सुनिश्चित कर दिया गया था। कम से कम हमारे देश में तो काला रंग अच्छा नहीं माना जाता है, लेकिन वकीलों के कोट काले रंग के होते है, बक्से काले रंग के होते हैं। इस तरह न्याय के मन्दिर में सब काला ही काला दिखाई देता है।''(6)

समाज का जायजा लेते लेते साजिद के माध्यम से लेखक समाज की तमाम समस्याओं का चित्रण करते हैं, समाज के प्रति उत्तरदायित्व को निभाते निभाते, सत्य की परतें खोलते हैं। इस दौरान साजिद की व्यक्तिगत जिन्दगी की कशमकश भी चलती रहती है। सफल जिंदगी में उदासी, खालीपन के बादल भी छाये हुए हैं– छोटे शहर लौटकर अपनी पुश्तैनी घर मल्लु मंजिल में अपने अनुसार परिवर्तन करते हैं। साजिद की पत्नी नूर और बेटा हीरा लंदन में रहते हैं। बहरहाल साजिद के साथ अनुराधा रहती है, परंतु दोनों के रिश्ते को समाज मान्यता नहीं देता है।

सच तो यह है कि मूलतः पत्रकार होने के नाते साजिद के माध्यम से असगर वजाहत ने हमें जो यथार्थ दिखाया है, समस्याओं की रणभूमि को चित्रांकित किया है, उस रणभूमि में वे हमें मझधार में नहीं छोड़ते, बल्कि एक सफल योद्धा के रूप में उन समस्याओं का हल भी कलम जैसे भास्त्र के माध्यम से करते हैं।

साजिद स्वच्छता अभियान के अंतर्गत कूड़ा उठाने का सोचता है। अपने सभी साथियों द्वारा सहायता लेता है। यह छोटी सी बात राजधानी तक चली जाती है – बात दरोगा जी तक पहुँचती है, लेकिन नतीजा यह निकलता है कि नगरपालिका से ट्रैक्टर आएँगे और कूड़ा हटाया जाएगा, उन्होंने समस्या को उजागर भी किया और सहजता से युक्तियों द्वारा हल करने की कोशिश भी की है। उनकी राय यह भी कि धर्मस्थल का निर्माण ऐसी जगहों पर हो जहाँ विवाद की स्थिति ना बने। साजिद धीरे धीरे पूरे शहर का जीर्णोद्धार करने एक यात्रा की योजना बनाता है, इसका उद्देश्य यह था कि गाँव की, छोटे शहरों की, इलाके की स्थिति, समस्याओं, चुनौतियों, संस्कृति, शिक्षा विभाग, स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति, को जानना और समझना। जागरूकता रैली के साथ छोटी–छोटी फिल्में दिखायी जायेंगी, खेलकूद का प्रबन्ध, प्राचीन स्मारको का अवलोकन भी किया जाएगा।

अंततः साजिद सोचता है वह जीवन की परिभाषा से अवगत हो गया है, यही उसकी अन्तः यात्रा है। धीरे–धीरे विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े बहुत से लोग जिंदगी के अर्थ को समझने के लिए ज्ञानयात्रा में शामिल होने चले जाते हैं। यह यात्रा जीवन का अभिप्राय खोजने की यात्रा है और एक महत्पूर्ण प्रसंग में आये इस वाक्य में कहीं इस उपन्यास का निहितार्थ व्याप्त है ....''यह यात्रा संसार के हर आदमी को जीवन में एक बार तो करनी ही चाहिए।''(7)

अतः कहा जा सकता है कि असग़र वजाहत की उपन्यास त्रयी का यह अंतिम भाग 'धरा अंकुराई' व्यक्ति और समाज की कशमकश के महाकाव्य के रूप में सामने आया है। यह उपन्यास व्यवस्था के घटाटोप अंधेरे में उम्मीद की एक किरण दिखाता है, बशर्ते सैयद साजिद अली जैसा अन्तयात्रा का संकल्प हो, क्योंकि इस अन्तःयात्रा से व्यवस्था में बदलाव संभव है। वास्तव में असगर वजाहत का यह उपन्यास ज्ञानयात्रा है – अनेक विवरणों, वृतान्तों के माध्यम से देश को जानने और समझने की। उनकी रचनाओं में जीवन का यथार्थ रूप अपने–अपने परिवेश के साथ दीप्तिमान हुआ है। उनकी यही विशेषता समकालीन हिन्दी साहित्यकारों की श्रृंखला में उन्हें श्रेष्ठ स्थान देती है।

संदर्भ :

(1) वज़ाहत, असगर (2014) : ''धरा अंकुराई'', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण पृ. 29. ***(2)*** *वही, पृ. 31.* ***(3)*** *वही, पृ. 50.* ***(4)*** *वही, पृ. 63–64.* ***(5)*** *वही, पृ. 74.* ***(6)*** *वही, पृ. 112.* ***(7)*** *वही, पृ. 182.*

❁❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Refereed Monthly Journal : Hindi Literature
Research Link - 171, Vol - XVII (4), June - 2018, Page No. 114-115
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

हरिओम द्वारा रचित 'विवेकानंदजी के प्रेरक प्रसंग' : एक अध्ययन

प्रस्तुत शोधपत्र में हरिओम द्वारा रचित 'विवेकानंदजी के प्रेरक प्रसंग' का अध्ययन किया गया है। विवेच्य पुस्तक में दिए गए गए विचार प्रेरणा के परिचायक बनकर प्रस्तुत होते हैं। इसके प्रत्येक प्रसंग में स्वामी विवेकानंदजी के जीवन के साथ लेखक ने समाज को जो देना चाहा है, वे उसमें पूर्णतः सफल हुए है। फिर चाहे वह समाज में स्त्री की स्थिति, राष्ट्र भावना, आत्मज्ञान, सच्चे कर्म, शालीनता, दुर्बल की सुरक्षा और त्याग आदि पहलू ही क्यों न हो। स्वामीजी ने लोगों के बीच रहकर छुआ-छूत, वर्ण्य भेद, जाति भेद आदि समाप्त करने की जो मिसाल प्रस्तुत की है, वह अनोखी और अभूतपूर्व है। वर्तमान समय में समाज को इनसे प्रेरणा लेनी चाहिए। हरिओम द्वारा रचित विवेच्य पुस्तक मनुष्य को मनुष्य से मिलाने में सहायक सिद्ध होगी।

डॉ.आरती शर्मा

हरिओमजी द्वारा रचित 'विवेकानंदजी के प्रेरक प्रसंग' में स्वामी विवेकानन्द के विचारों को सुखी, स्वस्थ और खुशहाल जीवन को प्रतिफुलित करने में सक्षम है। इसमें स्वामीजी के जीवन को बड़ी ही पैनी दृष्टि के साथ प्रस्तुत किया गया है, वह काबिले तारीफ है। हरिओमजी ने इसमें स्वामी जी के बचपन से लेकर मृत्यु पर्यंत के जीवन के सफर को बड़ी ही सुन्दरता और संजीदगी के साथ प्रस्तुत किया है।

इसमें वर्णित स्वामीजी के जीवन के प्रति विचार, ''नास्तिक वह नहीं, जो ईश्वर को नहीं मानता, बल्कि वह है, जो स्वयं में विश्वास नहीं रखता।'' सच में आज के समाज की मुँह बोलती तस्वीर को बयान करता है। स्वामी जी का यह प्रसंग मनुष्य को उसके कर्मों की ओर अग्रसर करने में सहायता प्रदान करता है। जो व्यक्ति जीवन से हताश, निराश और केवल भाग्य पर ही सब कुछ छोड़ कर बैठे होते हैं, उनके लिए तो यह पुस्तक जीवन में नया मोड़ लाने वाली साबित होगी।

फिर चाहे वह 'असाधारण महामानव' वाले भाग में नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) का बचपन में क्लास में पढ़ाई की तरफ ध्यान न देने पर अपने अध्यापक द्वारा फटकार खाने पर उनका इस प्रकार कहना कि, ''मास्टर जी मैं दोनों कार्य एक साथ कर रहा था। यदि सम्पूर्ण ध्यान लगाया जाए, तो भिन्न प्रकृति में कार्यों को भी एक साथ किया जा सकता है।''(1) उनकी विलक्षण प्रतिमा और साहस को प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रेरणात्मक प्रसंग 'दीन दुनिया की सहायता करो!'

स्वामीजी का अपने पिता के कपड़े साधुओं को दिए जाने पर जब उनके पिता ने उन्हें डांटा तो उनका इस तरह कहना कि, ''पिता जी आप ही कहते हैं कि दीन–दुनिया की सहायता अवश्य करनी चाहिए। फिर यदि मैं सहायता करता हूँ, तो मुझे रोका क्यों जाता है, क्या कहने और करने में अंतर होता है।''(2) पूर्णतः समाज में दीन दुखियों की मदद करने वाला प्रसंग है, जिसे सुनकर उनके पिता भी निरूउत्तर हो जाते हैं।

'देश प्रेम' के भाग में स्वामीजी की देश भक्ति को जिस ढंग से प्रस्तुत किया गया है, वह विलक्षण है। इस प्रसंग को आज की युग पीढ़ी को पढ़ने और अमल में लाने की बहुत ही आवश्यकता है। जिससे युवाओं का विदेशों में जाने का रूझान कम हो और उनमें अपने देश के लिए देश–भावना उजागर हो। यहाँ तक कि स्वामीजी विदेशों में भी अपने देश प्रेम के प्रति सदैव तत्पर रहते थे। उन्होंने वहाँ (अमेरिका के शिकागो) पर अपने भाषण में कहा– ''कैसी ज्ञानदायिनी तेजस्वरूपा है, यह मेरी मातृभूमि है! कैसा सुन्दर सलोना है, इसका महिमामय हिमालय, पर हाय रे मातृभूमि! तू पददलित, तिरस्कृत और गुलाम है।''(3)

हमें समस्याओं का डटकर मुकाबला करना चाहिए, उनसे डरना नहीं चाहिए। इसक भी सटीक उदाहरण पुस्तक में चरितार्थ हो जाता है। जब स्वामी जी बन्दरों के झुंड में अकेले पड़ जाते हैं और अपने आप को असहाय अनुभव करने लगते हैं। तभी वहाँ पर अचानक एक बुर्जुग व्यक्ति का आकर यह सीख देना– ''वहीं रूक जाओ, भागो मत, पीछे पलटकर बंदरों के सामने सीधे खड़े हो जाओ। डरो मत''(4), जिसे सुनकर स्वामी जी ने उसकी बातों का अनुसरण भी किया और वहाँ से सुरक्षित निकलने में कामयाब हो गए, जिसका उन्होंने कई जगह वर्णन भी किया है। ''उन विकराल बन्दरों से अगर भागता रहता, तो मैं बचता नहीं। बंदर मुझे मार डालते, लेकिन जब मैं उनके सामने खड़ा हो गया, तो वे चुपचाप भाग गए।''(5)

'निर्धन की दयालुता' के प्रसंग में स्वामीजी जब कई दिनों तक भूखे होने पर एक नीच व्यक्ति द्वारा लाये गए भोजन को खा लेते हैं, तो इस पर उच्चवर्गीय व्यक्ति आपत्ति जताते हैं। तब उनको

सहायक प्राध्यापक, शहजादा नंद कॉलेज, अमृतसर (पंजाब)

फटकार लगाते हुए स्वामी जी ने यह कहा कि, ''तुम लोगों ने तीन दिनों से मुझे बकवाया है, किन्तु मैंने कुछ खाया है या नहीं, क्या इसकी खोज खबर ली थी? फिर भी यह आदमी छोटा और नीच है। और आप अपने को सम्मानित और ऊँचा समझते हो। उसने जो मनुष्यता दिखाई है, उससे वह नीच कैसे हुआ?''(6)

धैर्य को भी इसमें स्वामी जी के महान व्यक्तित्व के संबंध में प्रस्तुत किया गया है। जब लंदन में भाषण के दौरान किसी विदेशी के द्वारा बार–बार तंग किए जाने पर भी स्वामी जी ने अपने धैर्य का परित्याग नहीं किया, तो वहीं पर मौजूद श्रोताओं ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा कि, ''आपका धैर्य और सहनशीलता प्रशंसनीय है। आप सचमुच महापुरूष हैं।''(7)

'साहस की जीत' प्रसंग में मेहनत, प्रयत्न और लग्न को जिस ढंग से प्रस्तुत किया गया है। वे नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) के साहस को तो प्रस्तुत करता ही है, साथ ही आने वाली पीढ़ी के लिए एक मिसाल बनकर सामने उभरा है कि किस तरह बीच सड़क पर घोड़ा बिदक जाता है और कोचवान झटकों से नीचे घिर जाता है और बीच में बैठी सवारियाँ चीख–चीख कर मदद की गुहार लगाने लगती है, तभी बीच सड़क पर बारह–तेहर वर्ष का किशोर उस घोड़गाड़ी को काबू में करने का प्रयत्न करने लगता है। जिससे उसे बहुत हानि भी पहुँचती है और उसका खून भी रिसने लगता है। लेकिन वह इस सब की प्रवाह किए बिना बीच में बैठी हुई सवारियाँ की जान बचाने के लिए निरंतर प्रयत्न करने लगता है। आखिर में उसके साहस और कोशिश की जीत होती है। वह घोड़े को काबू में कर उनकी जान बचाता है। वह बालक कोई ओर नहीं स्वामी जी स्वयं ही थे। आगे इसी भाग में माँ की अपने बेटे को सीख भी किसी प्रेरणा से कम नहीं है। किस प्रकार माँ अपने बेटे को दूसरों की मुसीबतों और कठिनाइयों को अपनाने का जिस ढंग से पाठ पढ़ाती है, वह सराहनीय है। विवेकानन्द जी जब विदेश जाने के लिए अपने माँ से आशीर्वाद लेने के लिए आगे बढ़ते हैं, तो माँ का उसे यह कहना – ''पहले मेरा काम कर बाद में आशीर्वाद दूँगी।''(8) वह काम और कोई नहीं था। उस बालक को भविष्य में आने वाली मुसीबतों से अवगत करवाना और दूसरों को भी उस मुसीबत से दूर रखने से अवगत करवाना था। माँ के कहे अनुसार विवेकानन्द जी तलवार अंदर से लाकर माँ के हाथ में जब थमाते हैं, तो वह उसका मुँह अपनी तरफ और माँ को उसकी मुठ थमा देता है। यह सब देख माँ अति प्रसन्न होती है और उसे अब यह लगता है कि जो बह अपने बेटे के भीतर देखना चाहती थी। वह उसमें एकदम खरा उतरता है। फिर माँ उसे आशीर्वाद देती हुई कहती है, ''जो दूसरों की कठिनाई को समझता है और मुसीबत अपने हिस्से में लेता है, उसी पर भगवान का आर्शीवाद बरसता है।''(9)

एक सच्चे देश–भक्त की अनूठी मिसाल भी इनकी पुस्तक के भाग 'मुक्ति की चाह' मैं बखूबी से मिल जाती है। जब स्वामी विवेकानन्द को अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस के पूछने पर कि – ''तुम्हें मुक्ति चाहिए, तो उन्होंने उत्तर दिया– नहीं, मुझे मुक्ति नहीं चाहिए!''(10) यह सुनकर वे आश्चर्यचकित हो गए और जब उनसे इसका कारण पूछा तो उनका कहना था। जब तक मेरे करोड़ों भारतवासी भाई–बहनों को मुक्ति नहीं मिल जाती, तब तक मुझे मुक्ति नहीं चाहिए। भारत में मुक्ति चाहने वाले नागरिकों की लाइन लगेगी, तो विवेकानन्द उस लाइन का अन्तिम व्यक्ति होगा।''(11) जिसे सुन उनके गुरु ने उन्हें गले से लगा लिया।

इस प्रकार विवेच्य पुस्तक में दिए गए विचार प्रेरणा के परिचायक बनकर प्रस्तुत होते हैं। इसके प्रत्येक प्रसंग में स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन के साथ 'हरिओम' जी ने समाज को जो देन देनी चाही है, उसमें वे सफल हुए हैं। फिर चाहे वह समाज में स्त्री की स्थिति, राष्ट्र–भावना, आत्मज्ञान, सच्चे कर्म, शालीनता दुर्वल की सुरक्षा और त्याग इत्यादि पहलू ही क्यों न हो।

इस तरह करके स्वामी जी ने लोगों के बीच मिसाल प्रस्तुत की थी, क्योंकि उस समय छुआ–छूत, वर्ण्य भेद, जाति भेद आदि समाप्त करने का इससे आसान तरीका और कोई नहीं था। जिसे पढ़कर आज के लोगों को भी उनके द्वारा दी गई शिक्षा को अपनाना चाहिए। आज भी उनके मन में कहीं न कहीं जाति को लेकर भेद–भावना रहती ही है। 'हरिओम' द्वारा रचित पुस्तक मनुष्य को मनुष्य से मिलवाने में सहायक सिद्ध होगी।

संदर्भ :

(1) हरिओम (2010) : विवेकानन्द जी के प्रेरक प्रंसग, भारतीय संस्कार प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ० 15.

(2) *वही, पृ० 19.*

(3) *वही, पृ० 26.*

(4) *वही, पृ० 69.*

(5) *वही, पृ० 69.*

(6) *वही, पृ० 80.*

(7) *वही, पृ० 83.*

(8) *वही, पृ० 86.*

(9) *वही, पृ० 86.*

(10) *वही, पृ० 91.*

(11) *वही, पृ० 91.*

❁❁